

नियमसार, २८२ कलश । अधिकार ऐसा लेंगे कि केवलज्ञान अपने को जानता है । बाद की गाथा में लेंगे कि केवलज्ञान सर्व को जानता है । दोनों बातें ली हैं । आहाहा ! उसमें मर्म क्या है ? कि यह आत्मा ज्ञानस्वरूप है । वह ज्ञानस्वरूप हर पल, हर क्षण जो रागादि चीज़ होती है, उसका तो वह जाननेवाला है । आहाहा ! क्योंकि नवतत्त्व में राग-द्वेषादि भिन्न तत्त्व है । आत्मा ज्ञानस्वरूपी ज्ञान का पिण्ड प्रभु, वह अपने को जानता है और राग को जानता है, यह व्यवहार कहेंगे । बाकी यहाँ तो अपने को ही जानता है । आहाहा !

( निश्चय से ) आत्मा सहज परमात्मा को... सहज परमात्मा अर्थात् अपना स्वरूप । सहज परमात्मा अर्थात् अपना पूर्ण स्वरूप । आत्मा सहज परमात्मा को देखता है— आहाहा! ऐसी ताकत है । आत्मा मानना, वह कहीं साधारण बात नहीं है । अन्तर में उसकी शक्ति, आत्मा अपने परमात्मा के पूर्ण स्वरूप को देखता है, जानता है । आहाहा! वह प्रतीति में आना । विकल्परहित प्रतीति होती है । आहाहा! कि जो परमात्मा एक है,... स्वयं आत्मा स्वरूप से तो एक है । भले गुण अनन्त हों, तो भी वस्तु एक है । आहाहा! विशुद्ध है,... निर्मल है । विशुद्ध का अर्थ, शुभभाव के अर्थ में भी विशुद्ध आता है और शुद्धता के अर्थ में भी विशुद्ध आता है । विशुद्ध शब्द से यहाँ ( आशय ) निर्मल है । आहाहा!

भगवान् आत्मा विद्यमान जीव है । अपने अस्तित्व में विराजमान है । यह विशुद्ध है । एक है । गुणभेद आदि नहीं । द्रव्य एक है । आहाहा! और विशुद्ध है । निज अन्तःशुद्धि का आवास होने से... निज-अपनी शुद्धि का स्थान होने से । अपनी शुद्धि को रहने का वह स्थान है । आहाहा! ( केवलज्ञानदर्शनादि ) महिमा का धारण करनेवाला है,... आहाहा! यह बात बैठना... भाई! यह तो छद्मस्थ है, छद्मस्थ । राग होता है, उसे भी कहते हैं कि तेरा आत्मा तो प्रभु पूर्ण है न । आहाहा! और वास्तव में तो तू पूर्ण आत्मा को देखता है न, प्रभु! आहाहा! अपने को छोड़कर पर को देखना, वह तो व्यवहार है । वह व्यवहार कहेंगे । व्यवहार है, परन्तु निश्चय में तो अपने स्वरूप को स्वयं देखता है । आहाहा! छद्मस्थ को भी ऐसा है । यह कहा न? आहाहा!

( केवलज्ञानदर्शनादि ) महिमा का धारण करनेवाला है, अत्यन्त धीर है... शाश्वत् धीर प्रभु है । ध्रुव धीर । आहाहा! उसकी अन्तर में दृष्टि करना, वही परमात्मा है । तू अन्दर परमात्मा है । यह कहा न? आत्मा सहज परमात्मा को देखता है— कि जो परमात्मा एक है,... तेरा स्वरूप पूर्ण है । आहाहा! वह निज अन्तःशुद्धि का आवास होने से... अन्तर निर्मल शक्तियों का आवास, घर, निवास है । आहाहा! अनन्त महिमा का धारण करनेवाला है, अत्यन्त धीर है और निज आत्मा में अत्यन्त अविचल होने से... निज आत्मा में... पर की बात यहाँ जरा भी नहीं है । पर को तो स्पर्श नहीं करता । पर का तो अपने में अत्यन्त अभाव-स्वभावस्वरूप है । आहाहा! ऐसा स्वरूप आत्मा का है । शुद्धोपयोग अधिकार है न? शुद्धोपयोग ।

परमात्मा अन्दर पूर्ण तुझमें है। अनन्त-अनन्त गुण का आवास। आहाहा! अनन्त गुण को रहने का स्थान तू है। राग और पुण्य और पर्याय, वह रहने का स्थान नहीं। आहाहा! ऐसे आत्मा को अन्तर (में) देखना और अनुभव करना, इसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। आहाहा! कठिन बात है। एक-एक कठिन बात वीतराग की तो है। आहाहा!

सवेरे कहा था न कि शुभभाव करे कोई भी... आहाहा! अब अभी तो ऐसा कहते हैं कि शुभभाव से शुद्ध होता है। प्रभु कहते हैं कि शुभभाव करे और शुद्ध को भूले, वह नपुंसक है। आहाहा! प्रभु को कहाँ दुनिया की पड़ी है? सन्तों को कहाँ पड़ी है? दिगम्बर सन्तों को दुनिया की कुछ पड़ी नहीं। दुनिया कैसे माने, न माने। सुगठित रहे, (न रहे) विषम तर्क। विषम तर्क उठावे, वह स्वतन्त्र है। दिगम्बर सन्तों को जगत की कुछ पड़ी नहीं है। नागा बादशाह से आघा। आहाहा! जिन्हें बादशाह की भी गिनती नहीं। सत्य को प्रसिद्ध करने में संकोचहीनता नहीं है। वह तो स्वरूप ऐसा है, ऐसा तुम मानो, जानो। छद्मस्थ में भले रागादि हैं, परन्तु वे तेरी चीज़ नहीं है। आहाहा! तू तो उनका जाननेवाला है। उन्हें जाननेवाला कहना, यह भी व्यवहार है। अपने में स्व और पर को जानने की शक्ति है तो अपने को जानता है। उसी क्षण में राग को भी अपनी सत्ता से पर की अपेक्षा बिना, राग की अपेक्षा बिना राग को अपने में जानता है। आहाहा! ऐसा स्वरूप!

अत्यन्त अविचल होने से सर्वदा अन्तर्मग्न है। प्रभु सर्वदा—तीनों काल द्रव्यस्वभाव से अन्तर्मग्न ही है। यह वस्तु जो आत्मा है—द्रव्य, वह कभी राग में, पुण्य में आया ही नहीं। आहाहा! सर्वदा अन्तर्मग्न है। अन्तर आनन्दादि गुण में मग्न है। ऐसी सूक्ष्म बात है। मार्ग दूसरा नहीं, भाई! तुझे तेरी कीमत करना न आवे, तब तक सब शून्य है। आहाहा! तेरी कीमत और तेरी क्या चीज़ है? तू परमात्मस्वरूप ही है। आहाहा! वह सर्व गुण को रहने का स्थान है। वह विकार को रहने का स्थान नहीं है। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है, वह भाव रहने का स्थान नहीं है। आहाहा! कठिन पड़े। पुण्य से धर्म होता है... पुण्य से धर्म होता है... पुण्य से पवित्रता होती है। बस, यह लेख। लेख आते हैं। जैन में आते हैं न? उसमें यही पूरा लिखा है। पुण्य के कारण धर्म होता है, पुण्य के कारण पवित्रता होती है। आहाहा!

एक जगह दृष्टान्त आता है। पुण्य से पवित्रता। परन्तु वह पुण्य अर्थात् पवित्रता की

बात है। वह पुण्य शुभराग की बात नहीं है। आहाहा! पुण्य को पवित्रता कही है। परन्तु वह अपना पवित्र स्वभाव, उसे यहाँ पुण्य को पवित्र कहा है। शुभभाव को पुण्य कहकर पवित्र कहा है, ऐसा नहीं है। एक ओर कहते हैं कि शुभभाव अपनी चीज़ से दूर है। अपना स्वरूप पुरुषार्थमय है; राग, वह नपुंसकता है। आहाहा! बैठना कठिन पड़े। जैनधर्म वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ केवलज्ञानी ने कहा हुआ यह वस्तु का स्वरूप ऐसा है। किसी ने बनाया नहीं। भगवान ने कोई चीज़ बनायी नहीं। तथा भगवान उस चीज़ को स्पर्श भी नहीं करते। परन्तु चीज़ कैसी है, ऐसा जानना, वह भी व्यवहार जानने में मग्न है। अपने को परसम्बन्धी जो ज्ञान होता है, उसमें मग्न है। आहाहा!

वह सर्वदा अन्तर्मग्न है। तीनों काल भगवान आत्मा अन्तर अनन्त गुण में निमग्न है। आहाहा! कर्म में तो वह आया नहीं परन्तु पुण्य के शुभभाव में भी आया नहीं। ऐसा उसका स्वभाव त्रिकाल सर्वदा अन्तर्मग्न है। स्वभाव से महान... अपने स्वभाव से महान। आहाहा! मानना तो यह है। करके करने का तो यह है। दूसरा जाने, न जाने परन्तु आत्मा को जाने बिना सम्यक्त्व नहीं होता। आहाहा! आत्मा ऐसा है। दूसरे जो आत्मा कहते हैं, वह नहीं। सर्वज्ञ भगवान ने जैसा आत्मा कहा, उसका जितना अस्तित्व है और अस्तित्व की जो पद्धति है। अपने में मग्न, वह अपनी पद्धति है। आहाहा! बाहर में कभी आता नहीं। राग में द्रव्यस्वभाव कभी आता नहीं। आहाहा! और राग को जानता है, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। यह कहेंगे। बाद की गाथा में (कहेंगे)। जानता है। निश्चय से तो अन्तर्मग्न है। राग का ज्ञान होने पर भी अन्तर्मग्न है। आहाहा! ऐसा कभी सुना नहीं हो और बाहर में धर्म हो जाए। देव-गुरु की भक्ति या दया, दान (करो)। आहाहा!

प्रभु! तेरी कीमत अलौकिक है। तू पर की भक्ति करता है, वह भी तेरी चीज़ नहीं। आहाहा! भगवान की भक्ति करता है, वह भी तेरी चीज़ नहीं। वह भी विकल्प है। उस विकल्प का अपने में अपने से ज्ञान हुआ, उस ज्ञान में आत्मा मग्न है। विकल्प में मग्न नहीं। ओहोहो! यहाँ पहुँचना! दुनिया में से निवृत्ति नहीं न! इसके बिना भव का अन्त नहीं आयेगा, प्रभु! चौरासी के अवतार अनन्त-अनन्त अवतार किये। अपने में निमग्न आत्मा को जाना नहीं। किसी भी प्रकार से पराधीन और पर से अपना अस्तित्व जानकर... आहाहा! पर से कभी दृष्टि हटायी नहीं और हटाने का प्रयत्न किया नहीं। आहाहा! करना तो यह है। भगवान सर्वस्व अपने गुण में रहनेवाला अन्तर्मग्न है। है न?

अत्यन्त धीर है... आहाहा! और निज आत्मा में अत्यन्त अविचल... स्वरूप में, निज आत्मा में अविचल। कभी अपने स्वरूप में से हटता नहीं। आहाहा! अविचल होने से सर्वदा अन्तर्मग्न है। स्वभाव से महान ऐसे उस आत्मा में... आहाहा! स्वभाव से महान। किसी ने बनाया है या उसे महान कहते हैं, इसलिए महान है, ऐसा नहीं है। वह सब महिमावन्त महान पदार्थ ही है। आहाहा! सहज। है न? स्वभाव से महान... स्वभाव से महान है। अपने स्वभाव से ज्ञान और आनन्द, शान्ति और स्वच्छता, वीतरागता आदि अपने स्वभाव की महिमा में मग्न है। आहाहा! उसके कारण महान है। स्वभाव से महान है। किसी का करे और किसी को बनावे तो उसकी महिमा है और महान है, ऐसा नहीं है। आहाहा! अब ऐसा सूक्ष्म।

स्वभाव से महान ऐसे उस आत्मा में व्यवहारप्रपंच ( विस्तार ) है ही नहीं। आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा में व्यवहारप्रपंच है ही नहीं। है न? नीचे स्पष्टीकरण किया था। कल हो गया है। पर को जाने, इतना व्यवहार। यह प्रपंच भी उसमें नहीं है, कहते हैं। आहाहा! पर का तो करे नहीं परन्तु पर को जानना, ऐसा व्यवहार प्रपंच भी उसमें नहीं है। आहाहा! व्यवहार से कितने हटकर अन्दर में जाना, जहाँ भगवान का आवास है। आवास—रहने का स्थान, बँगला है, बँगला। अपना स्वरूप अपने में रहने का स्थान है। असंख्यप्रदेशी। आहाहा! वहाँ जाकर ( रहने का है )। उसमें व्यवहारप्रपंच है ही नहीं। आहाहा! वह कल नीचे का ( फुटनोट ) पढ़ा था। निश्चय से है, व्यवहार से जानते हैं परन्तु उसकी कुछ महिमा नहीं है। अपने को छोड़कर क्षेत्र से, भाव से, गुण अर्थात् भाव, पर्याय से, द्रव्य से अपने में से एक अंश भी दूर होकर पर के प्रपंच में पड़े, वह वस्तुस्वरूप है नहीं। आहाहा! ऐसा आत्मा अब। व्यवहार के रसवाले को एकान्त लगता है। आज व्यवहार का लेख बहुत आया है। पुण्य से होता है, पुण्य से ही भगवान मिलते हैं, पुण्य से ही पवित्रता होती है, पुण्य ही... पुण्य ही... ऐसा... नौ प्रकार के पुण्य करो, तुम्हारा कल्याण होगा। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, पुण्य को जानना, वह व्यवहारप्रपंच है। आहाहा! यह तो अपना ज्ञान, स्व-परप्रकाशक ज्ञान अपना स्वरूप है। उसमें मग्न है। आहाहा! कठिन पड़े।

( अर्थात् ( स्वभाव से मानने से ) निश्चय से आत्मा में लोकालोक को देखनेरूप व्यवहार-विस्तार है ही नहीं )। एकरूप चैतन्य प्रभु... आहाहा! उसमें कोई गुण भेदादि

व्यवहारप्रपंच है ही नहीं। तो पर को जाने, ऐसा व्यवहार (प्रपंच) है ही नहीं। एकरूप चैतन्यमूर्ति भगवान अनादि सत्ता, जिसकी सत्ता में पर का प्रवेश नहीं है और पर में अपना प्रवेश नहीं है और पर के प्रवेश में अपना प्रवेश नहीं, ऐसा व्यवहारप्रपंच है ही नहीं। व्यवहारप्रपंच का विस्तार है ही नहीं। आहाहा! अन्दर है या नहीं? आहाहा! उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि केवलज्ञानी पर को नहीं जानते। तो छद्मस्थ भी यह जाने वह पर को नहीं जाने, ऐसा नहीं है। पर को जानते हैं परन्तु पर की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! नीचे का कल चला था। ऐसा कि केवली पर को नहीं जाने तो नीचे वाला तो पर को जाने नहीं। वह पर को जाने तो जानने की अपनी शक्ति है। स्व-पर प्रकाशक अपनी शक्ति अपने से है। पर को जानने की शक्ति से आत्मा में पर को जानने की शक्ति है, ऐसा है नहीं। स्व और पर को जानने की शक्ति स्वतः सहज अपनी महिमा में, अपनी महानता में वह तो है। आहाहा! और वह महानता यह है। अपने में रहना, यह महानता है। आहाहा!

निश्चय से आत्मा में लोकालोक को देखनेरूप व्यवहार-विस्तार है ही नहीं। आहाहा! एक ओर ऐसा कहते हैं तथा दूसरी ओर जानने का कहते हैं। निश्चय से... आहाहा! यह सब बात सिद्ध करने में आत्मा ज्ञान-दर्शन का पिण्ड है, (ऐसा कहना है)। ज्ञान वह अपने को और पर को व्यवहार से जाने-देखे। परन्तु दूसरा कुछ पर का करे, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! बहुत तो पर को जाने, ऐसा व्यवहार से कहो, परन्तु व्यवहार से पर को हिलावे-चलावे, क्रिया करे - यह वस्तु में तो है नहीं, प्रभु! आहाहा! कठिन काम है। यह कार्यकर्ता सब काम करे, उन्हें भारी कठिन लगता है। बहुत वर्षों पहले डेबरभाई के साथ चर्चा हुई थी। नीम के नीचे। वे कहें निमित्त तो हम होते हैं न? निमित्त होवें तो होवे न। आहाहा! निमित्त होवें तो होवे न। निमित्त होवे तो होता है तो जो सामने चीज़ है, वह पर्यायरहित है? अपने कार्यरहित है? जो चीज़ - द्रव्य निकम्मा पड़ा है? उसके कार्य बिना निकम्मी पड़ी है? कार्य तो पर्याय है। कोई भी द्रव्य कार्य बिना का पड़ा है? कार्य कहो या पर्याय कहो। आहाहा! निमित्त क्या करे? निमित्त कुछ नहीं करता। आहाहा! कहो, इस पुस्तक को रखा, इसलिए तो... आहाहा! कठिन बात है, भाई!

यह तो वीतराग है। परमात्मा कहते हैं कि जैसे हम हैं, वैसे तुम हो। अनादि काल से तू ऐसा है। तुझे भ्रम है (कि) अल्प हूँ, रागी हूँ, पर को जानने में रुकना, वह तुझे भ्रम है। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अनन्त दर्शन, ज्ञान, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता, उसका

वह घर और आवास है। आहाहा! बसने के लिये वह बास है। आवास अर्थात् वह रहने का स्थान है। पर को रहने का स्थान नहीं। राग भी आत्मा में रहे, ऐसा आवास नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग! और वापस टीका करे कि तुम ऐसा कहते हो फिर यह जहाँ-तहाँ शिविर लगाना, दूसरे को समझाना और यह सब उपाधि किसलिए करते हो? ऐई! बाबूभाई! अरे! प्रभु! वह तो बनने के काल में बनता है। कोई करता नहीं। वास्तव में तो ज्ञाता है। उस काल में वह जड़ की पर्याय उस प्रकार से भाषा की पर्याय का काल है तो भाषा होती है। आहाहा! एक ओर कहे, किसी का कुछ कर नहीं सकता और अब दूसरी ओर तुम्हारे लोग जहाँ-तहाँ उपदेश देने घूमते हैं। तो उसमें कुछ कर सकते हैं या नहीं? आहाहा!

**मुमुक्षु :** लोगों को मायाचारी जैसा लगता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मायाचारी जैसा... आहाहा!

भगवन्त! तेरा स्वरूप ही ऐसा है, नाथ! तू तुझे जाने; पर को जाने, वह परसम्बन्धी जाने नहीं। वह अपनी शक्ति स्व-परप्रकाशक है, उसे जाने। और वह स्व-परप्रकाशक शक्ति अपने में निवास करती है। अकेले पर को जानना, उसकी यहाँ बात नहीं है। आहाहा! पुण्य और पाप, दया और दान का तो आत्मा आवास है नहीं, परन्तु पर को जानने का भाव त्रिकाल में—स्व-परप्रकाशक शक्ति के पिण्ड में वह भी नहीं है। आहाहा!

**निश्चय से आत्मा में लोकालोक को देखनेरूप व्यवहार-विस्तार है ही नहीं।** आहाहा! और वह तो कहे पुण्य करो, करते-करते कल्याण हो जाएगा। पुण्य करो, दया करो, दान करो। करते-करते केवल(ज्ञान) हो जाएगा। व्यवहार साधन है, निश्चय साध्य है। व्यवहार से निश्चय होगा। यहाँ तो कहते हैं, व्यवहार को जाने-ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। आहाहा! व्यवहार जो, व्यवहाररत्नत्रय का राग आता है, उसे जानता है—ऐसा कहना, वह व्यवहारप्रपंच है। अपनी स्व-परप्रकाशक शक्ति में ही द्रव्य लीन है। आहाहा! कठिन बात है, भाई! दुनिया से अलग प्रकार है, इसलिए अलग लगती है। आहाहा! **लोकालोक को देखनेरूप व्यवहार-विस्तार है ही नहीं।** आहाहा! अब इससे उल्टा आया।

## गाथा-१६७

मुत्त-ममुत्तं द्रव्यं चेषण-मियरं सगं च सव्वं च ।  
पेच्छंतस्स दु णाणं पच्चक्खमणिंदियं होइ ॥१६७॥

मूर्तममूर्तं द्रव्यं चेतनमितरत् स्वकं च सर्वं च ।  
पश्यतस्तु ज्ञानं प्रत्यक्ष-मतीन्द्रियं भवति ॥१६७॥

केवलबोधस्वरूपाख्यानमेतत् । षण्णां द्रव्याणां मध्ये मूर्तत्वं पुद्गलस्य पञ्चानां अमूर्तत्वं ;  
चेतनत्वं जीवस्यैवं पञ्चानामचेतनत्वम् । मूर्तामूर्तचेतनाचेतनस्वद्रव्यादिकमशेषं त्रिकालविषयं  
अनवरतं पश्यतो भगवतः श्रीमदर्हत्परमेश्वरस्य क्रमकरणव्यवधानापोढं चातीन्द्रियं च  
सकलविमलकेवलज्ञानं सकलप्रत्यक्षं भवतीति ।

तथा चोक्तं प्रवचनसारे -

जं पेच्छदो अमुत्तं मुत्तेसु अदिंदियं च पच्छण्णं ।  
सयलं सगं च इदरं तं णाणं हवदि पच्चक्खं ॥

जो मूर्त और अमूर्त जड़ चेतन स्व-पर सब द्रव्य हैं ।  
देखे उन्हें उसको अतीन्द्रिय ज्ञान है प्रत्यक्ष है ॥१६७॥

अन्वयार्थ : [ मूर्तम् अमूर्तम् ] मूर्त-अमूर्त [ चेतनम् इतरत् ] चेतन-अचेतन  
[ द्रव्यं ] द्रव्यों को-[ स्वकं च सर्वं च ] स्व को तथा समस्त को [ पश्यतः तु ] देखनेवाले  
का ( जाननेवाले का ) [ ज्ञानम् ] ज्ञान [ अतीन्द्रियं ] अतीन्द्रिय है, [ प्रत्यक्षम् भवति ]  
प्रत्यक्ष है ।

टीका : यह, केवलज्ञान के स्वरूप का कथन है ।

छह द्रव्यों में पुद्गल को मूर्तपना है, ( शेष ) पाँच को अमूर्तपना है; जीव को ही  
चेतनपना है, ( शेष ) पाँच को अचेतनपना है । त्रिकाल सम्बन्धी मूर्त-अमूर्त चेतन-



अचेतन स्वद्रव्यादि अशेष को ( स्व तथा पर समस्त द्रव्यों को ) निरन्तर देखनेवाले भगवान श्रीमद् अर्हत्परमेश्वर का जो क्रम, इन्द्रिय और \*व्यवधान रहित, अतीन्द्रिय सकल-विमल ( सर्वथा निर्मल ) केवलज्ञान, वह सकलप्रत्यक्ष है।

इसी प्रकार ( श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत ) श्री प्रवचनसार में ( ५४वीं गाथा द्वारा ) कहा है कि:—

( वीरछन्द )

जो अमूर्त को और मूर्त में भी प्रच्छन्न अतीन्द्रिय को ।  
इन सबको अथवा निज-पर को देखे वह प्रत्यक्ष कहो ॥

‘ [ गाथार्थ:— ] देखनेवाले का जो ज्ञान अमूर्त को, मूर्त पदार्थों में भी अतीन्द्रिय को, और प्रच्छन्न को इन सबको—स्व को तथा पर को—देखता है, वह ज्ञान प्रत्यक्ष है। ’

गाथा - १६७ पर प्रवचन

गाथा १६७

मुक्त-ममुक्तं दव्वं चेयण-मियरं सगं च सव्वं च ।  
पेच्छंतस्स दु णाणं पच्चक्खमणिंदियं होइ ॥१६७॥

जो मूर्त और अमूर्त जड़ चेतन स्व-पर सब द्रव्य हैं ।  
देखे उन्हें उसको अतीन्द्रिय ज्ञान है प्रत्यक्ष है ॥१६७॥

टीका : यह, केवलज्ञान के स्वरूप का कथन है। छह द्रव्यों में पुद्गल को मूर्तपना है,... भगवान ने छह द्रव्य देखे हैं। उनमें पुद्गल जो है... आहाहा! उसे मूर्तपना है ( शेष ) पाँच को अमूर्तपना है; जीव को ही चेतनपना है, ( शेष ) पाँच को अचेतनपना है। आहाहा! एक चैतन्य। मूर्त के सामने एक चैतन्य। धर्मास्तिकाय आदि अमूर्त तो हैं परन्तु यहाँ तो मूर्त के सामने एक चैतन्य है। आहाहा! और जीव को ही चेतनपना है, ( शेष ) पाँच को अचेतनपना है। त्रिकाल सम्बन्धी मूर्त-अमूर्त चेतन-अचेतन स्वद्रव्यादि अशेष को ( स्व तथा पर समस्त द्रव्यों को ) निरन्तर देखनेवाले भगवान... लो! पहले

\* व्यवधान के अर्थ के लिये २८वें पृष्ठ की टिप्पणी देखो।

वहाँ निषेध किया तो फिर यहाँ हाँ (किया)। व्यवहार से। आहाहा! व्यवहार है, वह आदरणीय नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि निरन्तर त्रिकाल सम्बन्धी मूर्त-अमूर्त चेतन-अचेतन स्वद्रव्यादि अशेष को... जितने हैं, उन्हें। (स्व तथा पर समस्त द्रव्यों को) निरन्तर देखनेवाले भगवान... देखो! आहाहा! निरन्तर देखनेवाले, ऐसा कहा न? आहाहा! उसमें कहा कि निरन्तर तो अन्दर रहनेवाले हैं। अत्यन्त अविचल सदा अन्तर्मग्न हैं। आहाहा! यह तो व्यवहार सिद्ध करते हैं। परवस्तु है, वह अपने ज्ञान की ताकत में स्व को जानते हैं, वैसे पर को जानते हैं। ऐसा व्यवहार है। व्यवहार नहीं है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

समस्त द्रव्यों को निरन्तर देखनेवाले... भाषा देखी! उसमें व्यवहारप्रपंच बिल्कुल नहीं, ऐसा कहा। यहाँ कहते हैं कि निरन्तर देखनेवाले। आहाहा! व्यवहार लिया न, व्यवहार? ज्ञान की पर्याय का स्व-परप्रकाशक स्वभाव है। है तो अपने कारण से, परन्तु परप्रकाशक (कहा उसमें) पर की अपेक्षा ली है, इसलिए पर को निरन्तर देखते हैं— ऐसा कहने में आया है। आहाहा! एक धोरण क्या इसमें तब? यह सच्चा या वह सच्चा? उनके स्थान में दोनों सच्चे। निश्चय निश्चय के स्थान में सत्य है, व्यवहार जाननेयोग्य है, इतना व्यवहार है, उतना भी सत्य है। आहाहा! ऐसी बात है।

**मुमुक्षु** : अपनी-अपनी अपेक्षा से दोनों सच्चे।

**पूज्य गुरुदेवश्री** : दोनों अपेक्षा से। जाने। जाने, वह बिल्कुल न जाने तो केवलज्ञानी लोकालोक को जानते हैं, यह भी मिथ्या पड़ जाए। है तो लोकालोक को जाने, वह असद्भूतव्यवहार है। क्या कहा? केवलज्ञान लोकालोक को जानता है भगवान, वह असद्भूतव्यवहार है, झूठा व्यवहार है। सद्भूतव्यवहार नहीं। सद्भूतव्यवहार तो आत्मा की पर्याय और पर्याय, वह आत्मा, यह सद्भूतव्यवहार है। पर को जानना, वह तो असद्भूतव्यवहार है। आहाहा! वह भी एक है। बिल्कुल निकाल डाले और बिल्कुल व्यवहार से भी पर को न जाने, (ऐसा) एकान्त में ले जाए तो उसके लिये बात की है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

**मुमुक्षु** : व्यासकर जाने तो असद्भूतव्यवहार, व्यापे बिना जाने तो सद्भूतव्यवहार?

**पूज्य गुरुदेवश्री** : पर के साथ सद्भूत है ही नहीं। पर के साथ सद्भूत है ही नहीं।

पर के साथ असद्भूतव्यवहार है। अपनी पर्याय को अपने में जाने, वह सद्भूतव्यवहार है। आहाहा! यह ११वीं गाथा में कहा है। ११वीं गाथा। व्यवहार, वह सब अभूतार्थ है। है? व्यवहार सब अभूतार्थ है। व्यवहार सब अर्थात् अध्यात्म के हिसाब से चार व्यवहार हैं। एक असद्भूत उपचार और अनुपचार। एक सद्भूत उपचार और अनुपचार। अर्थात् क्या? कि आत्मा में जब राग होता है, वह ख्याल में आता है, उसका नाम असद्भूत उपचार कहने में आता है। ऐसी लम्बी बातें! पाठ में व्यवहार अभूतार्थ कहा। समयसार की ११वीं गाथा में। व्यवहार सब अभूतार्थ है। आहाहा! व्यवहार सब, तब एक व्यवहार नहीं होता।

व्यवहार परन्तु सब तेरे अधिक व्यवहार, अध्यात्म के व्यवहार भी चार हैं। आगम के व्यवहार तो बहुत हैं। नैगमनय और संग्रहनय वह सब आगम के हैं। यह तो अध्यात्मनय में भगवान आत्मा सब व्यवहार से भिन्न है।

व्यवहार चार प्रकार के हैं। उनमें राग आता है तो ज्ञात होता है कि यह राग उपयोग स्थूल है। ख्याल में आता है तो वह उपचार व्यवहार है। असद्भूत उपचार। असद्भूत (अर्थात्) आत्मा में है नहीं। असद्भूत उपचार। और उस समय में उपयोग सूक्ष्म नहीं है, इसलिए राग ज्ञात नहीं होता, तथापि है, वह असद्भूत अनुपचार व्यवहार है। आहाहा! और सद्भूतव्यवहार के दो भेद। ज्ञान राग को जाने, वह सद्भूतव्यवहार उपचार। आत्मज्ञान राग को जाने, वह सद्भूत ज्ञान अपना, पर को जाने वह सद्भूतव्यवहार। यह उपचार है। पर को जाने वह भी सद्भूत उपचार है और ज्ञान वह आत्मा, यह सद्भूत अनुपचार व्यवहार है। आहाहा! यह अर्थ ११वीं गाथा में चला था। व्यवहार सब अभूतार्थ है, (ऐसा) मूल पाठ टीका है। पश्चात् सब इसका अर्थ इसमें नहीं है। सबका अर्थ यह है। व्यवहार पर को जाने, अरे! ज्ञान, वह आत्मा—ऐसा भेद (करना), वह भी अभूतार्थ है। ज्ञायक, वह ज्ञायक है। आहाहा! वह निश्चय है।

वहाँ कहा, कि व्यवहार का प्रपंच उसमें नहीं है। आहाहा! यहाँ कहा कि त्रिकाल सम्बन्धी मूर्त-अमूर्त चेतन-अचेतन स्वद्रव्यादि... अपने स्वद्रव्यसहित, अकेला पर नहीं। अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावसहित अशेष को... दूसरे को भी स्वद्रव्यादि और अशेष... अर्थात् दूसरे। (स्व तथा पर समस्त द्रव्यों को)... अशेष का अर्थ पर लिया। आहाहा! यह

कहने का आशय इतना है, प्रभु! कि तेरा स्वरूप तो जानन-देखन है। बस! कुछ करना, किसी का करना, फंसाना, पर का करना तो है ही नहीं। आहाहा! परन्तु राग को करना, वह भी तेरी चीज़ में नहीं है। ज्ञान करे या ज्ञान जाने? आहाहा! जानन के पास करना, बताना, इसे रचना, वह तो मिथ्या भ्रान्ति है। आहाहा! कठिन बात है, भाई!

सद्भूतव्यवहार—ज्ञान, वह आत्मा, यह सद्भूतव्यवहार अनुपचार। वह ज्ञान राग को जानता है, यह सद्भूत उपचार व्यवहार। राग को जानने-देखने में आवे, वह असद्भूत उपचार व्यवहार और जानने में न आवे, (तो भी) है। क्योंकि स्थूल उपयोग है तो ज्ञात नहीं होता। स्थूल राग ज्ञात होता है। जो ज्ञात नहीं होता, वह असद्भूत अनुपचार व्यवहार। यह दो के आत्मा में है ही नहीं। असद्भूतव्यवहार, उपचार और अनुपचार यह आत्मा में नहीं है। इसीलिए असद्भूत कहा। और यह सद्भूत कहा, भले राग को जाने परन्तु ज्ञान अपने में है न, और ज्ञान वह आत्मा, यह तो अनुपचार सद्भूत है। आहाहा! ऐसी सब बातें। वे तो एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय की दया पालना, हिंसा न करना और मूर्तिवाले को मूर्ति बनाना और भक्ति करना... ओहो! एक व्यक्ति बिरधीचन्द अभी लिखता है कि मूर्ति की प्रतिष्ठा थी। यह सब लाखों लप (आडम्बर) बाद में घुस गयी है। ऐसा लिखा है। वर्ष भी दिया है। अमुक वर्ष के बाद ऐसा होगा? नहीं होता। व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार... उसमें यह कहाँ कर सकता है?

निश्चय से तो परमात्मा की प्रतिमा भी पधरा नहीं सकता। परद्रव्य को क्या करे? आहाहा! यह तो प्रतिष्ठा होने की पर्याय वहाँ होनेवाली हो तो होती है, तो आत्मा को निमित्त कहने में आता है। निमित्त है, इसलिए उससे यह हुआ, ऐसा है नहीं। बहुत कठिन काम। एक ओर मूर्ति पूजा... स्वाहा... (करके) चावल चढ़ावे, वह क्रिया आत्मा नहीं कर सकता। आहाहा! वह तो नहीं कर सकता परन्तु यह राग आया उसका भी जाननेवाला रहता है; करनेवाला नहीं होता। आहाहा! यहाँ पहुँचना।

यहाँ कहते हैं, यह व्यवहार है। स्व और परद्रव्य को निरन्तर देखनेवाले भगवान... आहाहा! पहले कहते हैं कि व्यवहार का प्रपंच नहीं देखते। यह व्यवहार का प्रपंच है, व्यवहार का विस्तार है। यह कहते हैं निरन्तर देखनेवाले भगवान श्रीमद् अर्हत्परमेश्वर का जो क्रम,... परमेश्वर का जो क्रम इन्द्रिय और व्यवधान रहित,... उन्हें जानने में क्रम

नहीं है। भगवान भले पर को जाने परन्तु क्रम नहीं है। एक के बाद एक जाने, ऐसा नहीं है। एक समय में सब लोकालोक जाने। आहाहा! पहले लोक जाने और फिर अलोक जाने, पहले स्व जाने और फिर पर जाने, ऐसा भी नहीं है। आहाहा!

त्रिलोक के नाथ परमात्मा तब हुए कि क्रमरहित, इन्द्रियरहित, व्यवधानरहित... आहाहा! यह स्पष्टीकरण अन्दर २८ पृष्ठ पर किया है। व्यवधान-दखल नहीं, दखल। केवलज्ञान में पर का व्यवधान अर्थात् दखल नहीं है। २८वें पृष्ठ पर नीचे है। है? व्यवधान =आड़; पर्दा, अन्तर, विघ्न, फासला। ऐसा है नहीं। आहाहा! है न? ऐसा... ऐसा... सुनना मुश्किल पड़े। एक तो मिले नहीं और मिले तब सूक्ष्म पड़े। इसे किये बिना छुटकारा नहीं है, प्रभु! चौरासी के अवतार में इसने दुःख भोगे हैं। उस दुःख को देखनेवाले की आँखों में से धारा चली है। आहाहा! देख सके नहीं। प्रभु! अनन्त काल हुआ। मूल वस्तु अभेद चैतन्य... आहाहा! पर को जाने, ऐसा व्यवहार हो, परन्तु अपना स्थान छोड़कर पर में जाए, ऐसा है नहीं। आहाहा! अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव चार को पर में जानने जाए, ऐसा है नहीं। आहाहा!

व्यवधान रहित, अतीन्द्रिय सकल-विमल... सर्वज्ञ भगवान अतीन्द्रिय-इन्द्रियरहित सकल-विमल ( सर्वथा निर्मल ) केवलज्ञान वह सकलप्रत्यक्ष है। सकल प्रत्यक्ष हैं। सब प्रत्यक्ष है। मूर्त-अमूर्त, स्वद्रव्य-परद्रव्य, सब प्रत्यक्ष हैं। आहाहा! परवस्तु भी प्रत्यक्ष है। प्रवचनसार में बहुत लिया है। प्रवचनसार में सब आता है। भविष्य में पर्याय होगी, वर्तमान है नहीं, वह केवलज्ञान को प्रत्यक्ष है। तब किसी ने प्रश्न किया कि है नहीं और प्रत्यक्ष जानते हैं, यह तो खोटी बात हुई। अरे! खोटी बात हुई नहीं, सुन तो सही। यह तो माहात्म्य हुआ। भविष्य की पर्याय है नहीं, अनन्त काल के पश्चात् पर्याय होगी। उसमें अभी है नहीं, उसमें, उसे केवलज्ञान भगवान... यह यहाँ कहा न सकल-विमल ( सर्वथा निर्मल ) केवलज्ञान, वह सकलप्रत्यक्ष है। उन्हें सकलप्रत्यक्ष है। आहाहा! एक ओर भगवान को व्यवहार प्रपंच कहा, वह तो पर की अपेक्षा से। यह जहाँ जानने का है व्यवहार, इतना स्व-परप्रकाशक।

स्व-परप्रकाशक दो प्रकार से है। एक स्व-परप्रकाशक स्व-रूप से है और एक स्व-परप्रकाशक पर की अपेक्षा लेने से परप्रकाशक है। आहाहा! क्या कहा? स्व-

परप्रकाशक दो प्रकार के हैं। एक अपना स्वरूप स्व-परप्रकाशक निश्चय से है। स्व-परप्रकाशक स्वरूप ही है। और स्व-पर स्व को को जाने और पर को जाने, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। यह कहा।

अतीन्द्रिय सकल-विमल ( सर्वथा निर्मल ) केवलज्ञान वह सकलप्रत्यक्ष है। क्या सकलप्रत्यक्ष है? पहली चीज़ जैसी कही वह। छह द्रव्यों में पुद्गल को मूर्तपना है, ( शेष ) पाँच को मूर्तपना है;... प्रत्यक्ष। जीव को ही चेतनपना है, ... प्रत्यक्ष ( शेष ) पाँच को अचेतनपना है। प्रत्यक्ष। त्रिकाल सम्बन्धी मूर्त-अमूर्त चेतन-अचेतन स्वद्रव्यादि अशेष को ( स्व तथा पर समस्त द्रव्यों को ) निरन्तर देखनेवाले भगवान श्रीमद् अर्हत्परमेश्वर का जो क्रम, इन्द्रिय और व्यवधान रहित, अतीन्द्रिय सकल-विमल ( सर्वथा निर्मल ) केवलज्ञान, वह सकलप्रत्यक्ष है। आहाहा! भाई! इसका अञ्जयास न हो, उसे कठिन लगे, परन्तु वस्तु तो यह है। आहाहा!

अन्तर चैतन्य भगवान इस परमाणु को छुआ नहीं है। यह परमाणु, अनन्त परमाणु प्रत्येक समय में, उसकी-परमाणु की पर्याय होती है। उस पर्याय में अपने आत्मा का अधिकार बिल्कुल नहीं है। आहाहा! यह बोलने में, वाणी निकलने में, लिखने में आत्मा का बिल्कुल अधिकार नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

प्रभु! तू तो ज्ञान है न? ज्ञान क्या करे? ज्ञान तो ज्ञान करे। तो यह कहा कि पर का ज्ञान करे, इतना व्यवहार भले रखो। बाकी तो ज्ञान स्वयं अपने में समाता है। पर का ज्ञान करते समय ज्ञान ने कहीं अपना स्थान छोड़ा है, ( ऐसा तो नहीं है )। आहाहा! इस प्रकार का धर्म! मार्ग तो ऐसा है, भाई! अरे! अनन्त काल से... आहाहा! चकनाचूर बालक को ऐसे। रास्ते में बालक बैठा था, उसमें एक ट्रक निकला, वह उसके ऊपर चल जाता है, चकनाचूर। आहाहा! भगवान! उसे भी तू जाननेवाला है। वह व्यवहार परन्तु उसे जाननेवाला व्यवहार है। बाकी जानना तो अपने में रहा है। जानने का स्थान, आवास, निवास, क्षेत्र, पर नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें! ऐसा धर्म! यहाँ तक आया। सकलप्रत्यक्ष है।

इसी प्रकार ( श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत ) श्री प्रवचनसार में ( ५४वीं गाथा द्वारा ) कहा है कि:— यह अब कहेंगे। ( श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव! )